‘नई पाठ्यचर्या’ पर पुनर्चिंतन

जॉनी एमएल

अनुवाद : रविकान्त

डॉ. अबुल कलाम आजाद तथा महात्मा गांधी के साथ वर्धा में करीब से काम कर चुके गांधीवादियों में एक गांधीवादी देवी प्रसाद का कहना है कि कला शिक्षा की बुनियाद है। उन्होंने एक ऐसी पाठ्यचर्या बनाई थी जिसमें कला को शिक्षा के माध्यम के तौर पर अपनाने पर खूब जोर दिया गया था। महात्मा गांधी यह मानते थे कि सीखना न सिर्फ अवलोकन व रट करके होता है बल्कि ‘खुद से’ काम करके भी होता है। महात्मा गांधी के लिए ‘करना’ कुछ वैसा ही था, जैसा कि भावी अवधारणात्मक कलाकार जोसेफ ब्यूज के लिए था, यानी जीवन शक्ति की कलात्मक अभिव्यक्ति जैसा कुछ। शायद महात्मा गांधी अपने रोजमर्रा के राजनैतिक मुहावरे यानी बोलचाल की भाषा में ‘कला’ व ‘सौंदर्य बोध’ जैसे शब्दों का इस्तेमाल करने में हिचकते थे, लेकिन वे उन अग्रणी भारतीय नेताओं में से एक थे, जिन्होंने कला की प्रेरक प्रकृति को न सिर्फ पहचाना बल्कि इसकी उस ताकत को भी पहचाना, जो भारत के दूरस्थ गांवों में बसने वाले लोगों पर भी असर डालने की काबिलियत रखती थी। महात्मा गांधी का यह नजरिया स्वेदशी कला के अगुवाओं, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर तथा नंदलाल बोस के शिक्षण से भी मेल खाता था, और यही वजह थी कि उन्होंने नंदलाल बोस को हरिपुरा कांग्रेस के पंडाल को ग्रामीण भारत के जीवन पर आधारित लघुचित्रों से सजाने के लिए बुलाया था। गांधी जी मानते थे कि ग्रामीण भारत में देश की आत्मा बसती है।

देवी प्रसाद महात्मा गांधी की ‘नई तालीम’ को गढ़ने व अमल में लाने वाले पैदल सिपाही थे, उन्होंने नई पाठ्यचर्या में बच्चों की सामान्य शिक्षा में कला को केन्द्रीय भूमिका सौंपी थी, जो कि महात्मा गांधी की अगुवाई में आजादी हासिल करने की तरफ बढ़ रहे भारत के भावी नागरिक बनने वाले थे। नई तालीम बच्चों को रट्टू तोता नहीं मानती थी; इससे उलट वह बच्चों को शिक्षा की महान परियोजना में रचनात्मक भागीदार तथा सहभागी समझती थी, जिसमें लचीली उम्र के बच्चों के सुगढ़ व्यक्तित्व को उभारने के साथ-साथ ही, देश निर्माण भी एक प्रमुख मकसद था। शिक्षा के रचनात्मक सहभागियों के तौर पर, शिक्षकों को बच्चों में, अपने बौद्धिक संकायों का इस्तेमाल करके चीजों के बारे में कल्पना करने की खास काबिलियत मिलती है; एक ऐसा कर्म, जो कि वैज्ञानिकों द्वारा परिकल्पित स्वयं-सिद्ध मान्यताओं जैसा होता है, जो उन्हें अग्रणी आविष्कारों की खोज की तरफ धकेल देता है। बच्चों में रचनात्मक कल्पनाशीलता वैसी ही है, जैसी वैज्ञानिकों के लिए परिकल्पनाएं होती हैं, प्रशासकों के लिए सामाजिक नियोजन होता है और अच्छे राजनीतिज्ञों के लिए राष्ट्रीय विकास होता है। यह आज भी वही है और पूरी दुनिया में शैक्षिक प्रणालियां कला को शिक्षा के केन्द्रीय पहलू के तौर पर शामिल कर रही है।

भारत को एक प्रतिस्पर्धात्मक देश के तौर पर हमेशा से ही महसूस किया जाता रहा है, खास तौर पर आजादी के बाद के बरसों में, अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत को खुद को साबित करने की जरूरत बनी रही है। इस प्रतिस्पर्धात्मक प्रकृति के चलते हमारे देश के बच्चे रचनात्मक उद्यमी बनने के बजाय आदतन प्रतिस्पर्धा के गुलाम बन गए हैं। हालांकि अपवाद यहां भी हैं, और बहुतों को कामयाबी की दास्तान के उदाहरणों के तौर पर पेश किया जा सकता है, लेकिन व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमारी शिक्षा प्रणाली को अभी भी ढेर सारी कल्पनाशीलता की जरूरत है और इसे हासिल करने के लिए तंत्र को बच्चों में रची-बसी कल्पनाशीलता को इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ेगी। रचनात्मक तथा कल्पनाशील व मौलिक बुद्धिमत्ता के साथ-साथ बच्चों में नवाचार करने की भावनाएं भी खूब पाई जाती हैं, अगर उन्हें सही दिशा मिले तो वे अपने चुने हुए विशेषज्ञता के क्षेत्र में रचनात्मक उद्यमियों के तौर पर विकसित हो सकते हैं। धरती पर आए हरेक बच्चे में रचनात्मक भावनाएं होती हैं, वे बढ़ेंगी या नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगी यह मोटे तौर पर उनके आस-पास के हालातों पर निर्भर करता है। यह सही है कि हरेक दूसरे बच्चे की नियति रवि वर्मा या पिकासो बनने के लिए नहीं होती। इसी तरह यह भी सही है कि हरेक बच्चे की नियति रवि शंकर या ए. आर. रहमान बनने की भी नहीं होती। लेकिन हरेक बच्चे में रचनात्मक व्यक्तित्व के तौर पर विकसित होने वाले बीज पाए जाते हैं और यह हमारी शिक्षा प्रणाली की जिम्मेदारी है कि वह बच्चों की रचनात्मक क्षमताओं को फलने-फूलने व उपयुक्त ढंग से विकसित होने में सहायक माहौल मुहैया करवाए।

शिक्षा के क्षेत्र में भी, आज के तकनीकी विकास की पृष्ठभूमि में देखा जाए तो जिस बात की महात्मा गांधी, डा. अबुल कलाम आजाद तथा देवी प्रसाद ने मिल कर नई पाठ्यचर्या की जो कल्पना की थी, वह पुरानी व टालने लायक लग सकती है। लेकिन अगर सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो हम यह समझ सकते हैं कि नई पाठ्यचर्या ने जो सुझाया था वह बात यह थी कि रचनात्मक चिंतन, चिंतन के सभी दूसरे पहलुओं का केन्द्रक यानी हब बन जाए; इसका मतलब यह नहीं था (और न ही है) कि शिक्षा को चित्रकारी व मूर्तिकला के जरिए ही करना चाहिए। यह तब होता है जब हम कला को बहुत ही संकरे अर्थों में लेते हैं। शैक्षिक संदर्भों में कला का मतलब बच्चों की सभी रचनात्मक काबिलियतों के सभी स्रोतों की मदद लेने के अलावा कुछ और नहीं है। अगर कलात्मक चिंतन को बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के केन्द्र में रखा जाए तो बच्चे बेहतरीन खोजकर्ता बन पाएंगे, भले ही उनकी रुचि का क्षेत्र कोई भी क्यों न हो। देवी प्रसाद ने बच्चों के साथ कुछ प्रयोग किए थे जिसमें फील्ड विजिट को सबसे ज्यादा अहमियत दी गई थी। आजकल, बच्चों पर स्वांग यानी सिमुलेशन के जरिए सीखने का दबाव दिया जाता है (बेशक डिजिटल तथा कम्प्यूटर तकनीकी की मदद से बने आभासी स्वांग यानी वर्चुअल सिमुलेशन ने पूरी दुनिया को कक्षा में समेट कर रख दिया है) और उनके दिमाग असली चीजों व हालातों के बजाए आभासी सुझावों के ज्यादा आदी हो गए हैं। देवी प्रसाद यह चाहते थे कि उनके शिक्षार्थी सूरजमुखी का चित्र बनाने से पहले और सूरजमुखी के बीज व तेल के बारे में जानने से भी पहले सूरजमुखी को जानें। यह संपूर्णतावादी नज़रिया दुनिया में पाई जाने वाली सजीव व निर्जीव चीजों से जुड़ कर पारस्परिकता विकसित करने के साथ-साथ जमीन से जुड़े रहने में बच्चों की मदद करेगा।

बच्चों के पास स्वाभाविक तौर पर कलात्मक काबिलियतें होती है, क्योंकि इन रचनात्मक काबिलियतों के जरिए ही विकासवादी प्रक्रियाएं अपनी गति बनाए रखती हैं। हरेक बच्चा दुनिया के सामूहिक विकास में मदद करता है; उदाहरण के लिए, अगर हर बच्चा प्लास्टिक के खिलौनों से मोहब्बत करने लग जाए तो यह दुनिया प्लास्टिक के खिलौनों से भर जाएगी; सचाई यह है कि एक तरफ प्लास्टिक के खिलौने बाजार में लाए जाते हैं, तो दूसरी तरफ अभिभावक व शिक्षक प्लास्टिक के इस्तेमाल को हतोत्साहित करते हैं। प्रोत्साहित व हतोत्साहित करना, दोनों ही मिल कर बच्चे को प्लास्टिक पर रचनात्मक ढंग से विचार करने पर मजबूर करते हैं, और इसके नतीजे में सिर्फ प्लास्टिक को नकारना ही नहीं होता, बल्कि उसके टिकाऊ इस्तेमाल करने, उससे दोबारा चीजें बना कर इस्तेमाल करने यानी रिसाइकिल करने, या प्लास्टिक व दूसरी चीजों का मिला-जुला इस्तेमाल करना भी हो सकता है। इस तरीके से कला शिक्षा के केन्द्र में आ खड़ी होती

है। हालांकि चित्र बनाना, रेखांकन करना, मूर्तिकारी करना या चीजें गढ़ना रचनात्मकता के बुनियादी पहलू हो सकते हैं; लेकिन अगर व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो हम कला के इन सभी घटकों में रचनात्मक चिंतन का इस्तेमाल करते हैं। आजकल, इन बुनियादी चीजों के दूसरे रचनात्मक क्षेत्रों जैसे फोटोग्राफी, डिजीटल इमेजिंग व इमेजिंग, एनीमेटिंग, तीन आयामी छपाई आदि में रचनात्मकता का इस्तेमाल इस स्तर तक पहुंच गया है जिसके बारे में पहले ना तो कभी सुना गया, ना ही देखा गया और ना ही कभी सोचा गया था।

इसे समेकित करते हुए, मैं यह कहना चाहूंगा कि कला रचनात्मक चिंतन का शुरुआती प्रारूप है और इसकी औपचारिक, संरचनात्मक तथा भौतिक अभिव्यक्ति है। हरेक बच्चे में किसी न किसी किस्म की रचनात्मक प्रतिभा पाई जाती है और उसका पोषण करने, संवारने, अभिव्यक्त करने तथा सराहने की जरूरत होती है। इसलिए किसी खास विषय के प्रति शुरुआती लगाव के आधार पर बच्चों की विभिन्न श्रेणियां बनाने के बजाय कक्षाओं को उदार बनाना चाहिए ताकि सभी बच्चे सभी तरह के हाथ के कामों के अनुभव हासिल कर सकें, इससे उन्हें अपनी महसूस करने की काबिलियत को विकसित करने का मौका मिलेगा जो उन्हें दूसरों की देखभाल व परवाह करने वाला बनाएगी। हालांकि महात्मा गांधी की नई तालीम अभी भी कोसों दूर नजर आती है, लेकिन हमें इस बात को समझना चाहिए कि हमारे देश निर्माता इस तरीके से सोचने में कुछ हद तक शिक्षित थे, और आज हम यह देखते हैं कि इसने हमारी सामूहिक कल्पना का कुछ खास नुकसान नहीं किया है। ज्यादा संसाधनों व संकायों की मदद से, यह करना रोचक होगा कि हम कला को शिक्षा के केन्द्र में रखने के विचार पर दोबारा काम कर पाएं और ज्यादा से ज्यादा चित्रकार व मूर्तिकार बनाने पर जोर देने के बजाय हम इस बारे में सोच सकें कि कैसे बच्चों की रचनात्मक प्रतिभाओं को उभरने के मौके दिए जाएं ताकि उनकी रचनात्मकता प्रतिभा बेहतर दुनिया बनाने में काम आ सके। ◆

लेखक परिचय : एम.एस यूनिवर्सिटी बड़ौदा से शिक्षित हैं। देश के जाने-माने 'आर्ट-क्यूरेटर' व कला समीक्षक हैं। समसामयिक सामाजिक मुद्दों से जुड़े आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भागीदारी करते हैं।

संपर्क : johnyml@gmail.com